दक्षयज्ञ का अन्तर्ज्ञान

दक्ष कौन है? दक्ष पृथ्वी स्वरूप है। इस धरा पर जो समस्त यज्ञ होते हैं, उनमें हमारे सत्य का रूप अर्थात् सती रूप को समस्त मंगल हेतु आवाहन करना पड़ता है। राजा दक्ष हुए इस सृष्टि के प्रतीक और माता सती हुई सृष्टिकर्ता की प्रतीक। किन्तु सत्य अर्थात्, सती अकेले किसी भी सृष्टि के संग एकरूप नहीं हो सकती। इसीलिए शिव अर्थात् मंगलमय का रूप, उनके साथ न आ सकने के कारण सृष्टि का, अर्थात् दक्षयज्ञ अमंगलमय हुआ।

''शंकर सती को पहचान न सके, वह समझ भी न सके कि सती वह महान एवं विराट सत्ता है, जिसका विनाश नहीं है। जिस अनादि, अनन्त शक्ति से इस विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है, जिसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर की सृष्टि की है। इसलिए शंकर ने मोहाच्छन्न होकर कहा, ''मैं इसे रोकूंगा और वह मेरी इच्छा के विरूद्ध कुछ भी न कर सकेगी।'' किन्तु सती ने जब कहा, 'देखो मैं कौन हूँ?' मेरे पथ में बाधा दे सके ऐसी कोई शक्ति विश्व ब्रह्माण्ड में नही है, एवं इसके उपरांत ही जब उन्होंने एक एक कर दशमहाविद्यारूप दिखाए, तो शंकर भय से अस्थिर हो उठे। उनके झूठे स्वामित्व का गर्व चूर-चूर हो गया। तत्पश्चात् शंकर ने जब उस चिन्मय सती देह को अपने स्कन्ध पर उठाया, तब वे अनन्त ज्ञान के अधिकारी हुए। उस ज्ञान में एक असीम शक्ति थी जिससे शंकर उस क्षण उन्मादवत् हो गए। बाद में दीर्घकाल तक तपस्या के पश्चात् अपने पूर्व रूप में आए, और अपनी कामाग्नि को मदनरुप से भस्म करके हुए देवाधिदेव।''

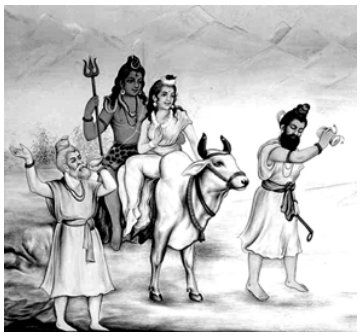

''मनुष्य जिस प्रकार देवी - देवताओं से कहते हैं, मुझे महान बनाओ और शत्रु का सर्वनाश करो, दक्ष ने भी इसी तरह कल्याण की पूजा नहीं की, अपितु ऐश्वर्य की पूजा की। सुन्दर का निर्वाचन करने में मंगल अनिर्वाचित रह गया। जहाँ शक्ति की साधना होती है, माँ भगवती वहाँ निवास करती है। जहाँ सत्य की पूजा होती है, वहाँ सती का आविर्भाव होता है। दुर्बुद्धि और अज्ञान से सराबोर दक्ष को सुबुद्धि देने व अहं के अंधकार को सत्य से आलोकित करने माँ सती बिना निमंत्रण, बिना आह्वान उस यज्ञस्थल पर अवतरित हुई। परन्तु राजा दक्ष ने माता सती की हितकथा का उल्लंघन कर, अपने मंगल को उपेक्षित कर, किया अपने अमंगल का आह्वान। शिव को छोड़ अशिव की पूजा की इसीलिए उनका यज्ञ विनष्ट हुआ। दक्षयज्ञ में सर्वप्रथम सत्य की अधिष्ठात्री देवी सती ने अपना बलिदान दिया। फिर भी मदमत्त दक्ष यह समझ न सके कि शिवहीन यज्ञ सिवाय अशुभ के और कुछ सृजन नहीं करता, इससे मंगल हो ही नहीं सकता। परन्तु जब मंगलमय शिव का आविर्भाव हुआ तब भी दक्ष ने उनका सम्मान करने की जगह अपमान किया एवं उनकी निन्दा की। मोहान्ध नर भी इसी तरह अपना सर्वनाश स्वयं करता है। समझाने पर भी नहीं समझता कि कौन सा पथ उसके लिए मंगलकारक है और कौन सा अमंगलकारी। प्रवृत्ति के वश होकर वह परम दुर्गति का पथ चयन करता है। हाँ, यहाँ यह ध्यान देने योग्य प्रसंग है कि शिव ने उस निष्प्राण सती देह को अपने कंधे पर उठा लिया। अच्छा, तो यह देखो सत्य के दो रूप–एक चैतन्यमय रूप जो सर्वदा सर्वत्र शाश्वत और नित्य है और दूसरा जड़रूप निष्प्राण सती-देह। इस जड़देह पर शंकर की जो माया है, वही साधक का अहंरूप है। पहचानो अभी शंकर की अवस्था कैसी है? सत्य का आलोक प्राप्त करने पर भी साधक का अहंकार नहीं गया। किन्तु, पूर्णब्रह्म का ज्ञान लाभ करने के लिए इस अहंज्ञान को विनष्ट करना होगा। इसलिए नारायण श्री हरि ने सुदर्शन चक्र से इस सतीदेह को खण्ड-खण्ड किया; एवं साधक के अहंज्ञान का सम्पूर्ण रुप में विनाश हुआ। शंकर की भी यहाँ दो मूर्तियाँ हैं - प्रथम साधक, द्वितीय है विष्णु की। सुदर्शनचक्र ''भगवत्ज्ञान'' है।

''दक्ष दम्भ व अहंकार की प्रतिमूर्ति है जो, मंगल का उल्लंघन कर यज्ञ समापन करने चला था। दम्भ व अहंकार की प्रतिकृति धारण करने के कारण हुआ अजमुख। मनुष्य यज्ञ करता है अपने अज्ञान की बलि देने के लिए। लेकिन दक्ष ने ऐसा नहीं किया, वरन् उसने की सत्य की अवमानना एवं शिव का अपमान। यही कारण था कि उसका यज्ञ विनष्ट हुआ और उसने उसकी सजा भी

पायी। वह अजमुख क्यों हुआ जानते हो? बकरे, भेड़ ऐसे जीव हैं जो किसी भी चीज में कोई आपत्ति नहीं कर पाते। एक को जिस ओर मोड़ोगे सभी उसके पीछे-पीछे चलेंगे। इसलिए साधक की प्रथम अवस्था बकरे, भेड़ जैसी होती है। इसके उपरांत दक्षराज सत्य के पथ की ओर अग्रसर हुए।

–नित्यसिद्ध महात्मा श्रीश्री विष्णुपद सिद्धांत की 'साधुर कथा' से उद्धृत

परमब्रह्म के साक्षी–५
श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

गतांक से आगे...

हृदय - पद्म के स्वरुप दर्शन की भाषा में:–

ई०१५.०४.९३ – गगनमंडल परिव्याप्त गाढ़ा नीलाभ -बैगनी उज्ज्वल वर्णयुक्त हृदय पद्म असीमाकार में परिव्याप्त दर्शन हुआ। बहुत समय तक यह दर्शन स्थिर रहा। –यह है दर्शन की प्रथम - अवस्था; तत्पश्चात् क्रमश: कूटस्थ पर वासन्ती रंग अर्थात् greenish light yellow की ज्योति प्रस्फुटित हुई, उसके बाद फिर वह लय प्राप्त होकर गाढ़े -नील वर्ण का Royal blue band या सुषुम्ना का स्वरुप प्रस्फुटित होता हुआ दर्शित हुआ। क्रमश: हृदय पद्म के कर्णिका के मध्य में स्वर्ण-बिन्दु दिखाई दिया एवम् सम्पूर्ण गगनमंडल में व्याप्त विराट नीले रंग का अण्ड उद्भासित हो उठा। दर्शन की तृतीय अवस्था में उस स्वर्ण बिन्दु के चारों ओर स्वर्णमयी आलोक की रश्मियाँ दिखाई दीं; उसके बहुत समय बाद केवल नीले अण्ड के मध्य में स्वर्णिम बिन्दु, अपूर्व दर्शित हुआ। यह दर्शन अधिक समय तक स्थायी रहा एवम् मन बिन्दु में केन्द्रित होने पर उस स्वर्ण बिन्दु का आकार वर्धित होने लगा।

ई०२६.०६.९३ – समस्त गगन मंडल में परिव्याप्त The Golden Sun का प्रकाश हुआ; उसके बाद प्राणचैतन्य के स्वरुप नील वैद्युतिक आलोक युक्त मेघ सदृश चतुर्दिशा में परिव्याप्त हो गया, उसके मध्य में सुषुम्ना नाड़ी स्वर्णवर्ण रुप में अतीव उज्ज्वल दिखाई दिया एवम् इसके मध्य में अस्पष्ट रुप में शिवलिंग का स्वरुप दर्शित हुआ। तत्पश्चात् ईड़ा-पिंगला अंतर्निहित होकर मध्य-केन्द्र में कुंडलिनी - शक्ति को आकर्षित करने से सम्पूर्ण गगनमंडल में (in a crackling way) सुनहली बिजली की आलोक की तरह फैल गया; उसके साथ प्रणव का स्तर भी बदल गया; प्रणव का शब्द और भी गंभीर हो गया। यहाँ हृदयपद्म के विषय में सामान्य चर्चा की गयी है। इसी अवस्था में योगीगण की योगनिद्रा होती है।

ई०२२.०६.९३ – सर्वप्रथम गुहा दिखाई दिया। उस गुहा के भीतर दूर पीत वर्ण का बिन्दु अतीव उज्ज्वल दिखाई दिया, यहाँ केन्द्र बिन्दु में मन लगाया तब बंशी की ध्वनि सर्वक्षण भीतर सुनाई दे रही थी। उसके बाद उस पीत वर्ण के बिन्दु ज्योति में मन लीन हो गया - तत्पश्चात् सम्पूर्ण गगनमंडल नील वर्ण होने लगा। उसके मध्य में स्निग्ध वासन्ती - पीत वर्ण के ज्योति मंडल का गोलक तैयार होने लगा। उसके मध्य में गहरा गाढ़ा गह्वर दिखाई पड़ा। वासन्ती - वर्ण एवम् पीत वर्ण ज्योति के मध्य स्वर्णिम छटा फैलने लगी - छटा लगभग पूर्ण होने पर-वासन्ती वर्ण और स्वर्ण वर्ण समन्वित एक अतीव सुन्दर मंडल दिखाई देने लगा। उसके बाद गह्वर में उस ज्योतिर्पुंज का प्रवेश होते ही गह्वर आलोकित हो उठा। कुछ दूर पर स्वर्णलिंग का दर्शन हुआ। उसके मध्य में मन को प्रविष्ट कराने की इच्छा हुई; उसमें कुछ क्षण विलंब हुआ। लिंग का स्वरूप जो दूर था निकट आ गया। उसके उपर केन्द्र में dazzling white bright light की बिन्दु की छटा दिखाई दी। उस ज्योतिर्मय आत्मबिन्दु में मन एकाग्र होते ही चेतना का उसके मध्य लय हो गया। परवर्त्ती अवस्था में वापस आने पर बोध हुआ कि नाद ध्वनि बंद हो गयी, सब अविचल अवस्था है, बोध के मध्य भी कोई स्पन्दन नहीं है। बहुत क्षण बाद स्पन्दन वापस आया। स्पन्दन का बोध होते ही कूटस्थ के गगनमंडल में – एक गहरे धूसर वर्ण के मंडल के मध्य एक अस्पष्ट गुहा दिखाई दिया, वहाँ वायु स्थिर हो रही है। उसके बाद गुहा के भीतर प्रवेश करते ही नाद ध्वनि क्षीण भाव में श्रवण होते-होते क्रमश: जोरदार हो उठती है। उस नाद ध्वनि श्रवण में मन एकाग्र हो गया।

–हिन्दी अनुवाद: मातृचरणाश्रित श्रीबैजनाथ पाठक